नहीं जानता कि इस देह की रचना प्रकृति ने की है, जो भगवान् श्रीकृष्ण की अध्यक्षता में कार्य करती है। विषयी इस सत्य से अनभिज्ञ रहता है कि अन्तिम रूप में वह सब प्रकार से श्रीकृष्ण के आधीन है। इस प्रकार का मिथ्या अहंकारी समझता है कि वह सब कुछ स्वयं स्वतन्त्र रूप से करता है। यह अविद्या का लक्षण है। वह नहीं जानता कि यह स्थूल-सूक्ष्म शरीर श्रीभगवान् के निर्देशानुसार माया द्वारा रचित है और इसलिए सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक कर्मों के द्वारा उसे कृष्णभावना—कृष्णसेवा में ही तत्पर रहना चाहिए। अज्ञानी भूल जाता है कि भगवान् श्रीकृष्ण हृषीकेश हैं, अर्थात् देह की इन्द्रियों के अधीश्वर हैं। सुदीर्घ काल तक विषयभोग करने में इन्द्रियों का दुरुपयोग करने से उत्पन्न हुये अहंकार द्वारा जीव मोहित हो रहा है। इसी कारण उसे श्रीकृष्ण से अपने नित्य सम्बन्ध का विस्मरण हो जाता है।

15/3

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।२८।।

तत्त्ववित्=तत्त्व से जानने वाला; **तु**=तो; **महाबाहो**=हे महाबाहु; **गुणकर्म**=गुणों द्वारा प्रेरित कर्म; **विभागयोः**=भेद को; **गुणाः**=इन्द्रियाँ; **गुणेषु**=इन्द्रियतृप्ति में; **वर्तन्ते**=तत्पर हैं; **इति**=इस प्रकार; **मत्वा**=मानकर; **न**=कभी नहीं; **सज्जते**=आसक्त होता।

अनुवाद

परन्तु हे महाबाहु! जो भक्तिभावमय कर्म तथा सकाम कर्म में भेद को भली प्रकार से जानता है, वह तत्त्वज्ञानी इन्द्रियों और इन्द्रियतृप्ति के परायण नहीं होता।।२८।।

तात्पर्य

तत्त्ववेत्ता निश्चित रूप से जानता है कि विषयसंग उसके स्वरूप के प्रतिकूल है। वह जानता है कि उसका स्थान इस प्राकृत-जगत् में नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह भगवान् श्रीकृष्ण का भिन्न-अंश है। सच्चिदानन्दमय श्रीभगवान् के भिन्न-अंश के रूप में अपने स्वरूप के ज्ञान के साथ ही उसे यह भी अनुभूति होती है कि जिस किसी कारणवश वह देहात्मबुद्धि के बन्धन में पड़ गया है। शुद्ध स्वरूप में उसका कार्य अपने कर्मों को श्रीकृष्ण के भक्तियोग में नियोजित करना है। अतएव वह कृष्णभावनाभावित कर्मों में ही पूर्णतया तत्पर होकर इन्द्रियतृप्ति विषयक प्रासंगिक एवं अनित्य कर्म से स्वतः विरक्त हो जाता है। वह जानता है कि उसकी सांसारिक परिस्थिति परमेश्वर के नियन्त्रण में है। इसलिए बड़े से बड़े प्राकृत दुःख से भी वह विचलित नहीं होता। दुःखों में भी उसे भगवत्कृपा का दर्शन होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार, जो परतत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा तथा श्रीभगवान्—इन तीनों रूपों में जानता है, वह **तत्त्ववित्** है। ऐसा ज्ञानी परब्रह्म के सम्बन्ध में अपने यथार्थ स्वरूप को भी जानता है।